जनसत्ता

24 दिसंबर, 2019

नतीजों के संदेश

झारखंड में विधानसभा चुनावों के नतीजे अप्रत्याशित तो नहीं हैं, लेकिन मौजूदा दौर में चल रही राजनीतिक उथल-पुथल के बीच जाहिर है कि इसे एक महत्त्वपूर्ण संदेश के रूप में देखा जाएगा। राज्य में पिछले पांच साल से सत्ता पर काबिज भारतीय जनता पार्टी को करारी शिकस्त का सामना करना पड़ा है और उसे उम्मीद से भी कम सीटें मिलीं। जबकि चुनावों से पहले प्रचार के दौरान भाजपा के लगभग सभी बड़े नेताओं ने राज्य में एक बार फिर पार्टी की सरकार प्रचंड बहुमत के साथ बनने का दावा किया था। लेकिन नतीजे में जो तस्वीर उभरी है, उससे साफ है कि झारखंड के मतदाताओं की आम राय भाजपा की सत्ता के खिलाफ रही। सन 2014 में जहां गठबंधन के भीतर पार्टी को इक्यासी में से अकेले सैंतीस सीटें मिली थीं, वहीं इस बार वह महज पच्चीस सीटों के आसपास सिमट गई। जबकि कांग्रेस, झारखंड मुक्ति मोर्चा और राष्ट्रीय जनता दल के गठबंधन ने आसानी से सरकार बनाने के लिए पर्याप्त बहुमत का आंकड़ा पार कर लिया। लोकसभा चुनावों में भाजपा को जहां इक्यावन फीसद वोट मिले थे, वहीं इस चुनाव में वह घट कर तैंतीस फीसद रह गया। सवाल है कि तमाम दावों के बावजूद आखिर ऐसा क्या हुआ कि राज्य में भाजपा की सत्ता को वहां के मतदाताओं ने खारिज कर दिया!

गौरतलब है कि बीते एक साल के दौरान यह पांचवा राज्य है, जहां भाजपा सत्ता से बाहर हो गई। जाहिर है, जिस दौर में भाजपा की ओर से देश भर में एकछत्र राज के दावे किए जा रहे थे, क्षेत्रीय पार्टियों के महत्त्व को कम करके आंका जा रहा था, उसमें उसे मुख्य चुनौती क्षेत्रीय पार्टियों से ही मिलती दिख रही है। महाराष्ट्र में जहां मुख्य रूप से राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी और शिवसेना के साथ की वजह से उसे सत्ता गंवानी पड़ी, वहीं अब झारखंड में झारखंड मुक्ति मोर्चा के महागठबंधन ने उसके सामने चुनौती पेश की। ऐसा लगता है कि यह केवल सत्ता के लिए राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का मसला नहीं है। पिछले कुछ सालों के दौरान जिस तरह विकास के लिए काम करने का दम भरते हुए भी ऐसे विवादों को मुख्य मुद्दे के रूप में पेश किया गया, जिनका आम जरूरतों से कोई सरोकार नहीं था और जो अप्रत्यक्ष रूप से सहज जीवन को बाधित करते थे, उस पर शायद लोगों ने गौर किया। आखिर रोजगार, घटती आय, अर्थव्यवस्था की बदहाली, छिनती जमीन और शिक्षा आदि सवालों को कब तक परदे के पीछे ढक कर रखा जा सकता था? आर्थिक मंदी के असर से राज्य में बड़ी तादाद में कारखाने बंद हुए और भारी पैमाने पर लोगों का रोजगार छिन गया। सरकारी नौकरियों में बहाली या तो रुक गई थी या फिर बेहद दयनीय अवस्था में चली गई। रोजमर्रा की जरूरतों से जुड़े ऐसे तमाम मुद्दों ने धीरे-धीरे ही सही, आम जनता के बीच जगह बनाई और उसका असर जनमत पर पड़ा और वह सत्ता विरोधी लहर में बदला।

जनतांत्रिक राजनीति की दुनिया में कई बार कुछ सामान्य और सहज घटनाक्रमों का विश्लेषण भी विशेष अर्थों में किया जाता है। झारखंड विधानसभा चुनावों के नतीजों को इसी संदर्भ में देखा जा सकता है। संसद और विधानसभा में सीटों की संख्या के लिहाज से अपेक्षया छोटा माने जाने वाले झारखंड के नतीजे शायद इतने महत्त्वपूर्ण नहीं माने जाते, अगर देश में कुछ खास मसलों पर बड़ी उथल-पुथल नहीं मची होती। लेकिन हाल में नागरिकता संशोधन कानून और राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर तैयार कराने के सवाल पर उठे राजनीतिक तूफान ने साधारण लोगों तक को आंदोलित किया है, उसमें इन नतीजों को एक खास संदेश के तौर पर देखा जा रहा है।

आग और सवाल

ठीक एक पखवाड़े पहले दिल्ली के अनाजमंडी इलाके में हुए भयानक अग्निकांड की त्रासद यादें अभी शांत भी नहीं पड़ी थीं कि सोमवार तड़के महानगर के किराड़ी इलाके में एक रिहायशी इमारत में लगी आग ने नौ लोगों की जिंदगी छीन ली। अनाजमंडी इलाके में हुए अग्निकांड में तैंतालीस लोगों मारे गए थे। इस घटना के बाद लगा था कि अब तो सरकार और लोगों दोनों की आंखें खुली होंगी और भविष्य में ऐसे बड़े हादसों से बचाव के लिए इंतजामों पर ध्यान दिया जाएगा। पर किराड़ी का हादसा बता रहा है कि लोगों की जान सस्ती है और जिस हालात में हम रह रहे हैं, उसमें ऐसे हादसों से कोई नहीं बचा सकता। हालांकि दमकल विभाग ने ढाई घंटे में आग पर काबू पा लिया गया, वरना संभव है कि यह अग्निकांड और भी कितनी जिंदगियां लील लेता। किराड़ी इलाके में जिस इमारत में आग लगी, उसके भूतल पर कपड़े का गोदाम था और बाकी तीन मंजिलों पर लोग रहते थे। शुरुआती जांच में आग का कारण शॉर्ट सर्किट होना बताया जा रहा है। भले ये बिजली के कारण लगने वाली आग हो, लेकिन सच्चाई यह है कि यह भी अब तक के सारे अग्निकांडों की तरह ही लापरवाही की आग है।

राजधानी दिल्ली में शायद ही कोई महीना ऐसा गुजरता हो जब कहीं किसी इलाके में आग लगने की घटना न होती हो। अग्निकांडों की इन बढ़ती घटनाओं से ऐसा लगता है कि इस समस्या को अब एक सामान्य स्थिति का दर्जा दे दिया गया है और इसीलिए लापरवाही कायम है। आग लग गई, बुझा दी गई, मारे गए लोगों को मुआवजा देकर शांत करा दिया, और फिर सब कुछ पहले की तरह पटरी पर लौट आया। आग में जली इमारतें दोबारा से खड़ा हो जाती हैं, कारोबार पहले की तरह चलने लगते हैं, मारे गए लोग भी जल्द ही भुला दिए जाते हैं, लेकिन सवाल वहीं के वहीं रह जाते हैं, वे लपटों में नहीं झुलस पाते, बल्कि ज्यादा गंभीरता के साथ खड़े होते हैं और जवाब मांगते हैं। पर जवाब दे कौन? आधे से ज्यादा दिल्ली की बसावट ऐसी है कि आग लगने पर मौके पर पहुंचने में दमकलकर्मियों तक के हाथ-पांव फूल जाते हैं। पुरानी दिल्ली तो बसी ही छोटी-छोटी और तंग गलियों में है और यही संकरे इलाके बड़े व्यावयायिक केंद्रों में तब्दील हो गए हैं। घरों में ही फैक्ट्रियां चल रही हैं, गोदाम बने हुए हैं, लेकिन आग जैसे हादसों से निपटने का कोई सुरक्षा इंतजाम नहीं है। गली, चौराहों पर बिजली के तारों का जंजाल हादसों का सबसे बड़ा कारण है। आखिर ये सब किसे देखना है? लेकिन सरकार को लगता है सरकार ने सबको मरने के लिए छोड़ दिया है। यही कारण है कि कभी जूता और पटाखा फैक्ट्री में आग लगती है तो कभी कागज का गोदाम धधक उठता है।

हर अग्निकांड की जांच में सबसे पहले यही निकल कर आता है कि संकरे और भीड़भाड़ वाले इलाकों में चलने वाले उद्योग जानलेवा बने हुए हैं। ज्यादातर हादसे शॉर्ट सर्किट के कारण हो रहे हैं, खुले और लटके तार चौबीसों घंटे मौत को न्योता देते रहते हैं। पर न बिजली विभाग, उद्योग विभाग को इसकी फिक्र है, न ही उद्योग चलाने वालों को। बार-बार यही सवाल उठता है कि आखिर रिहायशी इलाकों में गोदाम, फैक्ट्रियां आदि चल कैसे रहे हैं? इसमें कोई दो राय नहीं कि सरकारी तंत्र की मिलीभगत से ही रिहायशी इलाके व्यावसायिक गतिविधियों का केंद्र बने हुए हैं। सरकार का निगरानी तंत्र तो है, लेकिन लापरवाह है। यदि ऐसा नहीं है तो स्पष्ट है कि सरकार ऐसे कारोबारियों पर मेहरबान है। इसीलिए दिल्ली आग के ढेर पर बैठी है।

कल्पमेधा

युद्ध एक ऐसा धंधा है, जिसमें मनुष्य सम्मान से नहीं रह सकता।

– मैकियावेली

साइबर अपराध रोकने की चुनौती

अरविंद कुमार सिंह

साइबर अपराधियों के बढ़ते हौसले की मुख्य वजह यह है कि देश में साइबर अपराधों को रोकने और अपराधियों को दंडित करने के लिए कठोर तथा प्रभावी कानूनों का अभाव है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश में अभी भी साइबर अपराध गैर जमानती नहीं है। इसके लिए अधिकतम सजा तीन साल है।

देश के इकसठ फीसद कारोबारी और अन्य श्रेणी के संस्थानों का विकास साइबर हमले से बुरी तरह प्रभावित है। इस वजह से इन संस्थानों को भारी आर्थिक नुकसान भी उठाना पड़ रहा है। यह खुलासा एक आइटी विश्लेषक कंपनी ने किया है। यह स्थिति इस बात को रेखांकित करने के लिए पर्याप्त है कि देश के पनच्यानवे फीसद कारोबारी और संस्थान डिजिटलीकरण की राह पर तो चल दिए हैं, लेकिन साइबर हमले से निपटने के लिए पुख्ता सुरक्षा तंत्र विकसित नहीं कर पाए हैं। आंकड़े बताते हैं कि पिछले दो वर्षों के दौरान छियालीस फीसद संगठनों ने साइबर हमले झेले हैं। बीस फीसद संगठनों ने तो बीते एक वर्ष में कभी भी साइबर हमले से बचने का मूल्यांकन नहीं करवाया। सत्तर फीसद संगठनों ने साइबर सुरक्षा को लेकर बचाव का रास्ता अख्तियार किया। सिर्फ अठारह फीसद कंपनियों ने ही डिजिटलीकरण के शुरुआती चरण में साइबर सुरक्षा की व्यवस्था की।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आंकड़ों पर गौर करें तो देश में साइबर अपराध बीते दो वर्ष में दोगुना हो चुका है। वर्ष 2015 में साइबर अपराध के 11592 मामले दर्ज हुए थे, जबकि 2017 में यह संख्या 21796 पहुंच चुकी है। यानी तकरीबन अट्ठासी फीसद की वृद्धि हुई है। इनमें बड़ी संख्या संस्थानों और संगठनों पर हुए साइबर हमलों, वेबसाइट हैकिंग और अवैध लेन-देन की है। भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) साइबर हमले को नाकाम करने के लिए मौजूदा फ्रेमवर्क को मजबूत बनाने और साइबर सुरक्षा को अभेद्य बनाने की दीर्घकालीन रणनीति तैयार करने की बात कह चुका है। लेकिन साइबर हमले कम होने के बजाय बढ़े रहे हैं। इससे संस्थानों, संगठनों व विशेषकर बैंकों को लेकर लोगों में नाराजगी बढ़ी है। पिछले साल अमेरिकी कंपनी एफआइएस द्वारा वैश्विक स्तर पर किए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया कि देश के अठारह से छत्तीस वर्ष के आयु वर्ग के युवा उपभोक्ता बैंकों की कार्यप्रणाली से नाखुश हैं। उसका कारण यह है कि भारतीय बैंक अपने ग्राहकों की अपेक्षाओं की कसौटी पर खरे नहीं उतर रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि बैंकों के समक्ष कई तरह की चुनौतियां हैं, जिनमें एक सबसे बड़ी चुनौती साइबर अपराध रोकने की है। लेकिन बैंक इसमें नाकाम रहे हैं। सरकार के आंकड़े बता रहे हैं कि पिछले तीन वित्त वर्ष में बैंकों से जुड़े साइबर अपराध के 43204 मामले सामने आए हैं जिसमें अपराधियों ने 232.32 करोड़ रुपए का चूना लगाया है। वित्त वर्ष 2014-15 में डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड और इंटरनेट बैंकिंग से जुड़े साइबर अपराध के 13,083 मामले सामने आए जिनमें 80.64 करोड़ रुपए की चपत लगी। इसी तरह वित्त वर्ष 2015-16 में मामलों की संख्या बढ़ कर 16,468 तक पहुंच गई। पिछले वित्त वर्ष में कुल 13,653 मामले सामने आए जिनमें 72.68 करोड़ रुपए की चपत लगी।

साइबर अपराधियों के निशाने पर सबसे ज्यादा क्रेडिट कार्ड रहे हैं। एक अध्ययन के मुताबिक देश में आइटी एक्ट के तहत पंजीकृत साइबर अपराधों के मामले में 2011 से अब तक तकरीबन तीन सौ फीसद तक की वृद्धि हो चुकी है। इस अध्ययन में कहा गया है कि अगर साइबर अपराध पर नियंत्रण नहीं पाया गया तो साइबर हमलावर न्यूक्लियर प्लांट, रेलवे, परिवहन और अस्पतालों जैसी महत्त्वपूर्ण जगहों पर हमले कर सकते हैं जिससे कई गंभीर समस्याएं खड़ी हो सकती है और जनजीवन व सारे काम ठप पड़ सकते हैं। कुछ साल पहले भारत सहित दुनिया के ज्यादातर देशों में हैकरों ने साइबर हमला बोल कई देशों की सरकारों की नींद उड़ा दी थी।

पिछले एक दशक में भारत में साइबर अपराध अट्ठासी गुना बढ़े हैं। साइबर अपराधों के मामले में गिरफ्तारी में भी दस गुना बढ़ोत्तरी हुई है। साइबर अपराध के मामले में अमेरिका और चीन के बाद भारत तीसरे नंबर पर है। आज भारत की बड़ी आबादी डिजिटल जिंदगी जी रही है। अधिकांश लोग बैंक खाते से लेकर निजी गोपनीय जानकारी तक कंप्यूटर और मोबाइल फोन में रखने लगे हैं। इंटरनेट उपयोग करने के मामले में दुनिया तेजी से आगे बढ़ रही है। इंटरनेट पर जिस तेजी से निर्भरता बढ़ी है, उतने ही ज्यादा खतरे भी बढ़े हैं। यही वजह है कि हैकिंग की वारदातें भी तेजी से बढ़ रही हैं। भारत की ही बात करें तो यहां ऐसी अनेक देशी-विदेशी कंपनियां हैं जो इंटरनेट आधारित

कारोबार और सेवाएं प्रदान कर रही हैं। उचित होगा कि भारत सरकार ऐसी कंपनियों पर निगरानी रखने के लिए ऐसा निगरानी तंत्र विकसित करे जो इन कंपनियों पर कड़ी नजर रखे। उचित यह भी होगा कि जिन कंपनियों की कार्यप्रणाली संदिग्ध नजर आए उन पर शिकंजा कस कानूनी कार्रवाई की जाए। ऐसी कंपनियों के लाइसेंस निरस्त किया जाएं जो साइबर सुरक्षा से संबंधित नियमों का पालन करने में कोताही बरत रही हैं। इसके अलावा देश में अनेक ऐसी विदेशी कंपनियां सेवाएं दे रही हैं जिनका सर्वर भारत में नहीं है। ऐसी कंपनियों को निगरानी की जद में रखना एक बड़ी चुनौती है।

ऐसा नहीं है कि भारत में साइबर अपराध रोकने के लिए कानून नहीं हैं। भारत में साइबर अपराध को तीन मुख्य अधिनियमों के अंतर्गत रखा गया है। ये अधिनियम हैं-सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, भारतीय दंड संहिता और राज्य स्तरीय कानून। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम के अंतर्गत आने वाले प्रमुख मामलों में कंप्यूटर स्रोत और दस्तावेजों से छेड़छाड़, कंप्यूटर सिस्टम की हैकिंग, आंकड़ों में हेराफेरी, अश्लील सामग्री का प्रकाशन, गोपनीयता को भंग करना जैसे कई अपराध शामिल हैं। भारत में साइबर अपराध के मामलों में सूचना तकनीक कानून, 2000 और सूचना तकनीक संशोधन कानून, 2008 लागू होते हैं। किंतु इसी श्रेणी के कई मामलों में भारतीय दंड संहिता, कॉपीराइट कानून 1957, कंपनी कानून, सरकारी गोपनीयता कानून और जरूरत पड़ने पर आतंकवाद निरोधक कानून के तहत भी कार्रवाई हो सकती है।

साइबर अपराध के बदलते तरीकों और घटनाओं ने भीषण समस्या का रूप ले लिया है। जुर्म की दुनिया में अपराधी हमेशा कानून को गुमराह करने के लिए नए-नए तरीके ईजाद करते रहते हैं। हैकिंग के जरिए रक्षा-सुरक्षा से जुड़ी गोपनीय जानकारियों में सेंध लगाने की घटनाएं कई बाक सामने आ चुकी हैं। सीबीआइ दफ्तर जैसे संस्थान भी साइबर हमले की चपेट में आ चुके हैं। साइबर अपराधियों के बढ़ते हौसले की मुख्य वजह यह है कि देश में साइबर अपराधों को रोकने और अपराधियों को दंडित करने के लिए कठोर तथा प्रभावी कानूनों का अभाव है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश में अभी भी साइबर अपराध गैर जमानती नहीं है। इसके लिए अधिकतम सजा तीन साल है। उचित होगा कि सरकार साइबर अपराध से जुड़े कानूनों में फेरबदल कर इसे कठोर बनाए और सजा की मियाद बढ़ाए। देश में साइबर अपराध से निपटने के लिए साइबर थानों की संख्या में वृद्धि करना बहुत जरूरी है। ज्यादातर शहरों में तो साइबर अपराध की शिकायत भी सामान्य थानों में कराई जाती है और पुलिस इस काम को कर पाने में सक्षम नहीं होती। देश में साइबर थानों की संख्या पचास से भी कम है। सरकार को साइबर अपराध पर अंकुश लगाने के लिए कड़े कानून तो बनाना ही होंगे, आमजन को भी साइबर सुरक्षा से जुड़े उपायों का पालन करना होगा। मसलन हार्डड्राइव को सुरक्षित रखने के अलावा सिग्नल या वाट्सअप से संदेश भेजने पर जोर देना चाहिए। ईमेल पर दोहरी सुरक्षा कैसे हो इसका उपाय ढूंढ़ना चाहिए। असुरक्षित वेबसाइट पर जाने से बचना चाहिए। लेकिन देखा जा रहा है कि तमाम हिदायतों के बावजूद साइबर सुरक्षा संबंधी उपायों का पालन नहीं हो रहा है।

इंद्रधनुषी सौंदर्य

रुचि गर्ग

दुनिया मेरे आगे

कई विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करने वाली एक अनुभवी शिक्षिका ने अपनी कक्षा के बच्चों से उनका पसंदीदा रंग पूछा। बच्चों द्वारा बताए गए रंग को उन्होंने सभी बच्चों में समान मात्रा में बांट दिया और उनके प्रयोग से कक्षा को एक रंगोली बनाने को कहा। कक्षा में कुल चालीस बच्चे हैं, जिनमें से बीस बच्चों ने पीला रंग चुना और बाकी सभी बच्चों ने अलग-अलग रंग चुना। मसलन, हरा रंग पांच बच्चों के पास, लाल रंग चार बच्चों के पास। इसी प्रकार अलग-अलग रंग बच्चों ने चुने। पीला रंग पसंद करने वाले बच्चों ने अपनी रंगोली अलग से बनाने की मांग रखी। शिक्षिका के काफी समझाने पर भी जब वे नहीं माने तो शिक्षिका ने पीला रंग पसंद करने वाले बच्चों को समूह अ और अलग-अलग रंग पसंद करने वाले बाकी बच्चों को समूह इ में बांट दिया और उन्हें उनकी रंगोली बनाने के लिए एक घंटे का समय दिया। दोनों समूहों ने अपनी रंगोली बनाना शुरू किया। पीला रंग पसंद करने वाले बच्चों के समूह अ ने खुद को और भी छोटे-छोटे समूह में बांट लिया और चार अलग रंगोलियां बनाईं। उन्हें इस काम में बीस-पच्चीस मिनट लगे।

दूसरी ओर, बाकी सभी रंगों वाले समूह इ के बच्चों ने शुरुआत के बीस-पच्चीस मिनट केवल चर्चा में ही लगा दिए कि किस रंग का कहां और कितनी मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है। इसके बाद उन्होंने रंगोली का एक खाका तैयार किया और उसमें रंग भरना शुरू कर दिया। एक घंटा पूरा हो गया, लेकिन अभी उनका काम पूरा नहीं हुआ था। शिक्षिका ने एक घंटे के बाद दोनों समूहों को कार्य रोकने को कहा और बारी-बारी से उनसे चर्चा करने लगी। शिक्षिका ने समूह अ द्वारा बनाई गई चार रंगोलियां देखी और उनका अनुभव जानना चाहा। उस समूह के अधिकतर बच्चे समय से पहले कार्य पूरा कर लेने और चार रंगोलियां बनाने पर काफी खुशी जाहिर कर रहे थे। हालांकि इसी समूह के कुछ बच्चों को रंगों की कमी का एहसास भी था। पिर शिक्षिका ने समूह इ से उनके अनुभव पूछे। समूह के अधिकतर बच्चों को पीला रंग न होने की कमी महसूस हुई, क्योंकि अगर पीला रंग होता तो उनकी रंगोली और अच्छी बनती।

फिर शिक्षिका ने दोनों समूहों को एक दूसरे की रंगोली देखने को कहा। जब समूह अ ने समूह इ की रंग-बिरंगी रंगोली देखी तो उनकी आंखें चमक गईं, क्योंकि वह रंगोली अपना संदेश ज्यादा बेहतर और स्पष्ट तरीके से दे पा रही थी। दूसरी तरफ समूह अ द्वारा बनाई गई रंगोलियां भले ही चार थीं, मगर अलग-अलग टुकड़ों में थीं। सामूहिक रूप से उनके द्वारा किए गए कार्य का कोई अर्थ समझ नहीं आ रहा था। शिक्षिका ने इसके बाद बच्चों को अगले सप्ताह स्कूल में होने वाली रंगोली प्रतियोगिता के बारे में बताया, जिसमें हर कक्षा को अपनी एक रंगोली बनानी होगी। शिक्षिका ने बच्चों से कहा कि हमारी कक्षा से भी एक ही रंगोली जाएगी और यह आपको चुनना है कि वह कौन-सी रंगोली होगी। आप चाहें तो मिल कर भी एक रंगोली बना सकते हैं, लेकिन आपके पसंदीदा रंग वही होंगे। रंगोली का डिजाइन अलग हो सकता है, लेकिन उससे कोई संदेश स्कूल को जरूर मिलना चाहिए।

मुझे याद है कि बचपन में जब भी हमें 'मेरा देश महान' पर निबंध लिखने को कहा जाता था तो उसकी पहली लाइन होती थी कि 'भारत विविधताओं का देश है।' साधारण उदाहरण से समझा जाए तो उपर्युक्त कक्षा में बच्चों ने अपने-अपने पसंदीदा रंग चुने, यानी वे बच्चे जिनकी अपनी-अपनी पसंद है। जो हरा, नीला, काला आदि रंग है, वही हमारे देश में अलग-अलग समुदायों, धर्मों, जाति आदि को प्रदर्शित करते हैं। हम आगे बढ़ते हुए यह भी लिखते थे कि 'हमारे देश का संविधान विश्व में सबसे बड़ा है, क्योंकि अलग-अलग देशों के संविधान से चुन कर हमने अपने देश का संविधान बनाया है।'

मैंने जिन अनुभवी शिक्षिका की बात की, वे हमारे देश के संविधान की भांति हैं जो समझती हैं कि सबको एक साथ बांध कर खूबसूरती से कैसे पेश किया जा सकता है। कक्षा में शिक्षिका द्वारा बच्चों को रंगोली बनाने का दिया गया काम देश के सामने रोज आने वाली चुनौतियों, जैसे रोजगार, शिक्षा आदि के मुद्दे को सुलझाने से संबंधित है। पूरा स्कूल एक विश्व की तरह है, जिसमें विभिन्न कक्षाएं अलग-अलग देशों को प्रदर्शित करती हैं और हमारी कक्षा, जो हमारे देश की तरह है। स्कूल में की जाने वाली यह गतिविधि प्रतिस्पर्धा में कितनी खरी उतरती है, यह निर्भर करता है उस कक्षा के बच्चों पर, जो मिल कर काम करें। एक नागरिक होने के नाते यह सोचने का फर्ज हमारा है कि हम क्या चाहते हैं क्या हम आपस में एक दूसरे से ही प्रतिस्पर्धा करना चाहते हैं कि कौन-सा समुदाय, कौन-सी भाषा या कौन-सी जाति बेहतर है और कमजोर देशों के साथ खड़ा होना चाहते हैं? या फिर हम एक देश की तरह अपनी अनमोल और खूबसूरत संस्कृति को सर्वोपरि रखते हुए आगे बढ़ना चाहते हैं!

मौसम का मिजाज

भारत का राजनीतिक मौसम कैसा भी हो, उसकी चिंता इतनी गहरी नहीं कही जा सकती, जितनी चिंता वैश्विक पर्यावरणीय परिवर्तनो को लेकर की जानी चाहिए। इधर भारत में जहां पिछले डेढ़ दो दशक में पर्यावरणीय परिवर्तनों ने मौसम चक्र को सीधे तौर पर प्रभावित करना शुरू कर दिया है, वहीं विश्व के अन्य प्रमुख हिस्से भी इस पर्यावरणीय दुश्चक्र में घिरते नजर आने लगे हैं।

नवंबर, दिसंबर और जनवरी- ये तीन महीने निर्विवाद रूप से शीतकालीन मौसम के लिए पहचाने जाते हैं। इनमें से भी दिसंबर मध्य से लेकर जनवरी माह के प्रथम सप्ताह तक का दौर तीखी और चुभोने वाली ठंड का दौर होता है। विश्व के कई भागों में इस दौरान हाड़ कंपा देने वाली ठंड पड़ती है। बर्फ और तेज ठंड के लिए रूस विशेष रूप से प्रसिद्ध है। दिसंबर मध्य से लेकर अंत तक जिस रूस में सामान्य रूप से पारा माइनस 6 से 7 डिग्री तक चला जाता है। वहां इस वर्ष 18 दिसंबर को 6 डिग्री सेल्सियस तापमान होना चौंकाने वाला और कुछ अर्थों में चेतावनी देता लगता है। ये सारे परिवर्तन पर्यावरणीय असंतुलन के परिणाम ही हैं, जिन्हें मानव द्वारा ही महज कुछ एक दशक में तैयार किया गया है।

अपने यहां भारत में भी सारे ही मौसम करीब एक से सवा माह के अंतराल से आगे बढ़ चुके हैं। ऐसा पिछले कुछ वर्षों के मौसम चक्र से स्पष्ट मालूम होता है। यह मौसम परिवर्तन असमान रूप से असामान्य परिणाम के साथ नजर आए हैं। इनमें सूखा और अतिवृष्टि, दोनों ही के परिणाम से भारत रूबरू हुआ है। पर्यावरणीय असंतुलन या कहे बिगड़े मौसम चक्रों का क्रम कैसे फिर से सही क्रम में आएगा? संभवतः यह पर्यावरणविदों, मौसम वैज्ञानिकों के लिए भी अबूझ पहेली ही होगा।

बहरहाल, लगातार बिगड़ते मौसम चक्र देश और दुनिया की अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित कर सकते हैं। इस आशंका को भी निर्मूल नहीं कहा जा सकता। विगत एक दशक में मौसम चक्रों में आ रहे असामान्य परिवर्तन हम सबके लिए खतरे की घंटी ही है। जिसे सुन कर समय पर संभलना और उससे बचाव के उपाय धरातल पर धारण करना हमारे और भावी पीढ़ियों के लिए बेहद जरूरी और वर्तमान समय की सबसे जरूरी मांग नजर आता है।

● *अंबरीश भावसार, झाबुआ, मप्र*

संदेह की दीवार

देश में नागरिकता संशोधन विधेयक के लोकसभा और राज्यसभा से पास होने के बाद हर जगह इसका व्यापक विरोध हो रहा है। कारण केवल पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश से आए उन अल्पसंख्यकों को नागरिकता देना है, जो प्रताड़ित होकर यहां आए हैं। इसमें मुसलमान शामिल नहीं किए गए हैं। ऐसे में सवाल ये है कि क्या मुसलिम समुदाय के प्रति यह किस तरह का बर्ताव है? विरोध इसका नहीं कि तीन देशों के अल्पसंख्यकों को नागरिकता दी जा रही है, बल्कि इसका है कि उन्हीं स्थितियों में आए मुसलमानों को नागरिकता क्यों नहीं? क्या वे लोग उन देशों में सताए नहीं गए? फिर वे अपना देश छोड़ कर क्यों आए?

सवाल है कि प्रताड़ना या पिर सताने की परिभाषा क्या एक ही है? आखिर ऐसा क्यों हुआ कि पहले जो यह विरोध केवल पूर्वी भारत में सीमित था, लेकिन धीरे-धीरे यह पूरे भारत मे फैल गया। मुसलमानों के बीच यह धारणा बनी है कि उनके बीच से बहुत सारे लोगों को इस कानून के जरिए नागरिकता से वंचित किया जा सकता है। इससे बचने के लिए अपनी नागरिकता साबित करनी पड़ेगी। लोगों को भय है कि सीएए में जिन लोगों को नागरिकता नहीं मिल पाएगी, वे लोग भविष्य में आने वाली एनआरसी के तहत बाहर कर दिए जाएंगे।

सन 1893 में स्वामी विवेकानंद ने शिकागो के विश्व धर्म सम्मलेन में कहा था कि 'मुझे गर्व है कि मैं उस देश से हूं जिसने सभी धर्मों और सभी देशों के सताए गए लोगों को अपने यहां शरण दी है।' लेकिन आज विवेकानंद के उस कथन पर संदेह की दीवार खड़ी करने की कोशिश की जा रही है।

● *निरंजय सिंह, इविवि, प्रयागराज*

कमीशन का खेल

पिछले दिनों कहीं लिखा पढ़ा कि 'प्याज ज्यादा होता है, तो किसान रोता है और कम पैदा होता है तो आम लोग रोते हैं।' मेरे विचार से वास्तविकता यह है कि प्याज कम पैदा हो या ज्यादा, हर हालत में रोता किसान और आम आदमी ही है। इस देश में सदा 'दलाल' हंसता है, क्योंकि इनके नुमाइंदे ही सत्ता में हैं। सत्ताधारी आमतौर पर दलालों को बचाते हैं। उदाहरण के लिए अभी डेढ़ सौ रुपए किलो से पार प्याज की कीमत होने पर भी किसान को मात्र आठ रुपए प्रतिकिलो के भाव से ही भुगतान होने की खबर आई। मतलब प्रतिकिलो 142 रुपए दलाल की जेब में गया। यह भी खुला खेल है कि यह सब खेल सिर्फ जमाखोरी से उपजी समस्या है। प्याज को कहीं दूसरे देश में ले जाकर नहीं छिपाया गया है, बल्कि उसे इसी देश में कहीं छिपा कर, जमाखोरी कर उसका कृत्रिम अभाव बाजार के दलालों और सत्ता द्वारा मिल कर जानबूझ कर पैदा किया गया। यह एक बड़ी समस्या है। चूंकि इन कमीशनखोरों को संरक्षण मिला होता है, इसलिए उन पर कठोर कार्रवाई भी नहीं की जाती। इसलिए हर हालात में इस देश में मरेंगे किसान और आम आदमी ही। यही कटु सत्य है, चाहे कोई कुछ भी कहे

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

पुस्तक की जगह

आधुनिकता दौर में मल्टीमीडिया का जमाना है। आज हर एक व्यक्ति के पास स्मार्टफोन है, लेकिन हम सब पुस्तकों से दूर होते जा रहे हैं। पुस्तक पढ़ने से मनुष्य के अंदर ज्ञानमीमांसात्मक प्रवृत्तियों का विकास होता है। इससे मनुष्य में तथ्यों का विश्लेषण कर एक समालोचनात्मक नजरिया पनपता है, जो देश, दुनिया, सामाजिक सभ्यता और संस्कृति को समझने में मदद करता है। इसलिए छात्र-छात्राओं में पुस्तक के प्रति आकर्षण पैदा करना चाहिए। विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पुस्तकालयों का निर्माण अनिवार्य रूप से होना चाहिए जो 15-20 घंटे खुला रहे, ताकि हरेक विद्यार्थी अपने समयानुसार उसका सदुपयोग कर सकें। अगर और भी शुरुआती या बचपन के दौर में पुस्तकों के प्रति आकर्षण पैदा करना हो तो ग्रामीण पुस्तकालयों का निर्माण भी किया जाना चाहिए, जिससे गावों में पढ़ने-लिखने के साथ ही साथ लोगों में महान विभूतियों के जीवन के आदर्श मूल्यों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति मजबूत होगी।

● *सत्यम मिश्र, जौनपुर*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

www.readwhere.com